(९) रसेश्वर-दर्शनम्

माहेश्वरः कलितकाञ्चनचारुरूपो
रोगक्षपाक्षरणदीप्तदिनेशरश्मिः ।
मोक्षं च जीवति जने तनुतेऽक्षरं यः
पायादपायनिचयात्परपारदोऽसौ ॥—ऋषिः

(१. रस से जीवन्मुक्ति—पारद और उसका स्वरूप)

अपरे माहेश्वराः परमेश्वरतादात्म्यवादिनोऽपि, पिण्डस्थैर्ये सर्वाभिमता जीवन्मुक्तिः सेत्स्यतीत्यास्थाय, पिण्डस्थैर्योपायं पारदादिपदवेदनीयं रसमेव संगिरन्ते ।

[उपर्युक्त] महेश्वर-सम्प्रदायों में (= नकुलीशपाशुपत, शैव, प्रत्यभिज्ञा तथा रसेश्वर में) कुछ दूसरे [दार्शनिक] (= रसेश्वर सम्प्रदाय को माननेवाले) यद्यपि परमेश्वर (परमात्मा) के साथ [जीव का] तादात्म्य (एक रूप होना) स्वीकार करते हैं, तथापि सभी [दर्शनकारों से सम्मत जीवन्मुक्ति (= शरीर के रहते हुए जरामरणादि से छूट जाना) शरीर (पिण्ड) की स्थिरता होने से ही मिलेगी—ऐसी आस्था (विश्वास) रखकर, शरीर को स्थिर करने का उपाय रस को, जिसको 'पारद'—आदि शब्दों से भी जानते हैं (पारद = रस), बतलाते हैं ।

विशेष—महेश्वर (शिव) को परम-तत्त्व के रूप में स्वीकार करनेवाले दार्शनिक माहेश्वर कहलाते हैं । सर्वदर्शन-संग्रह में चार माहेश्वरों का वर्णन है—नकुलीशपाशुपत, शैव, प्रत्यभिज्ञा और रसेश्वर । वे सभी जीवात्मा का परमात्मा से ऐकरूप्य मानते हैं । रसेश्वर-दर्शन इन सबों से इसलिए पृथक् है कि इसमें जीवन्मुक्ति के लिए रस अर्थात् पारद-रस का प्रयोग अनिवार्य माना गया है । पारदरस से शरीर को अजर-अमर कर देते हैं, बिना वैसा किये जीवन्मुक्ति नहीं मिल सकती है । जीवन्मुक्ति वह है जिसमें आत्मतत्त्व का साक्षात्कार हो जाय, अभ्यास के आधिक्य से मिथ्याज्ञान का विनाश हो जाय किन्तु प्रारब्ध-कर्म को भोगने के लिए जीव-धारण किया जाय । इसे अपर-मुक्ति भी कहते हैं । सभी दार्शनिक इसे स्वीकार करते हैं, रामानुज आदि नहीं मानते यह दूसरी बात है । रसेश्वर के अनुयायियों का कहना है कि जीवन्मुक्ति का वास्तविक

आनन्द हम लोग ही जानते हैं क्योंकि शरीर को बिना अमर किये अनन्त जीवन्मुक्ति हो नहीं सकती। आयुर्वेद-शास्त्र के अनुसार पारद का महत्त्व प्रतिपादित किया जाता है।

रसस्य पारदत्वं संसारपरप्रापणहेतुत्वेन। तदुक्तम्—

१. संसारस्य परं पारं दत्तेऽसौ पारदः स्मृतः। इति।

रसार्णवेऽपि—

पारदो गदितो यस्मात्परार्थं साधकोत्तमैः।
२. सुप्तोऽयं मत्समो देवि! मम प्रत्यङ्गसम्भवः।
मम देहरसो यस्माद्रसस्तेनायमुच्यते॥ इति॥

संसार [के कष्टों] से [बचाकर] मोक्ष दिलाने के कारण ही रस को पारद (पार + द = मोक्ष देनेवाला) कहते हैं। कहा भी है—'जो संसार (पुनर्जन्म) के दूसरे पार (मोक्ष) की ओर पहुँचा दे वही पारद कहलाता है।' रसार्णव (ई० पू० का एक प्राचीन ग्रन्थ) में भी [कहा है]—'इसे पारद कहते हैं क्योंकि उत्तम साधक लोग मोक्ष (चरम लक्ष्य, पर-प्राप्ति) के लिए [इसका प्रयोग करते हैं]। [शिव पार्वती से कहते हैं कि] हे देवि, यह (पारद–रस) मेरे अन्तरङ्ग (प्रत्यङ्ग) से उत्पन्न है, सुप्तावस्था में रहने पर यह मेरे समान ही है, चूँकि यह मेरे शरीर का रस (द्रव-पदार्थ) है इसलिए रस कहा जाता है।'

विशेष—पारद (पारे) को रसशास्त्र में रुद्र का वीर्य माना गया है, इसलिए रसार्णव में शिव-पार्वती-संवाद के अन्तर्गत पारद को शिव अपना देहरस, प्रत्यंगसंभव आदि कह रहे हैं। पारद की उत्पत्ति के लिए देखें–"शिवाङ्गात् प्रच्युतं रेतः पतितं धरणीतले। तद्देहसारजातत्वाच्छुक्लमच्छमभूच्च तत्॥ अत्र भेदेन विज्ञेयं शिववीर्यं चतुर्विधम्। श्वेतं रक्तं तथा पीतं कृष्णं तत्तु भवेत् क्रमात्। ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रस्तु खलु जातितः॥" पारद की सुप्त अवस्था का अर्थ है जब वह मूल रूप में हो, शुद्ध नहीं किया गया हो। ऐसी ही अवस्था में उसकी तुलना शिव से की जाती है।

(२. जीवन्मुक्ति की आवश्यकता)

ननु प्रकारान्तरेणापि जीवन्मुक्तियुक्तौ नेयं वाचोयुक्तिर्युक्तिमतीति चेन्न, षट्स्वपि दर्शनेषु देहपातानन्तरं मुक्तेरुक्ततया तत्र विश्वासानुपपत्त्या निर्विचिकित्सप्रवृत्तेरनुपपत्तेः। तदप्युक्तं तत्रैव—

३. षड्दर्शनेऽपि मुक्तिस्तु दर्शिता पिण्डपातने ।
करामलकवत्सापि प्रत्यक्षा नोपलभ्यते ।
तस्मात्तं रक्षयेत्पिण्डं रसैश्चैव रसायनैः ॥ इति ।

यदि यह शंका करें कि दूसरे प्रकारों से भी तो जीवन्मुक्ति के उपाय [बतलाये गये] हैं इसलिए यह कथन (= पारद सेवन से शरीर को स्थिर करके जीवन्मुक्त होना) ठीक नहीं है—[तो समाधान यह होगा कि] ऐसी शंका न करें क्योंकि छह दर्शनों में देहपात के बाद मुक्ति का कथन होने से, विश्वास (= ऐसी मुक्ति में) न होकर, [लोगों की] असंदिग्ध (विश्वासपूर्वक) प्रवृत्ति [छह दर्शनों में कहे गये उपायों के प्रति] नहीं हो सकती । यह बात भी वहीं पर (रसार्णव में) कही गई है—'छह दर्शनों में शरीरनाश के बाद ही मुक्ति का निर्देश हुआ है, वह (मुक्ति) हाथ में रखे हुए आँवले की भाँति प्रत्यक्ष-रूप से नहीं मिलती; अतः इस शरीर की रक्षा रसों और रसायनों से करनी चाहिए ।'

विशेष—वाचोयुक्ति=घोषणा, कथन (अलुक् समास) निर्विचिकित्स= निःसंशय, विश्वासपूर्ण । करामलकवत्=हाथ में रखे आँवले की तरह; यह एक लौकिक-न्याय है । जब कोई बात प्रत्यक्ष से ही सिद्ध हो जाती है, किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती तब इसका प्रयोग होता है जैसे—शरीरस्य विनाशः करामलकवत् । रस=पारद से बने हुए योग (औषधियाँ) । रसायन=ऐसी औषधि जिससे वृद्धावस्था न आवे । रसेश्वर-दर्शन के विरोध में शंका यह की गई है कि छह दर्शनों में भी जीवन्मुक्ति का वर्णन है, मिथ्याज्ञान के विनाश के बाद सद्ज्ञान से होने वाली मुक्ति का निर्देश सभी लोग करते हैं (रामानुज-आदि इसे नहीं मानते) । तब रसेश्वर-दर्शन का उपक्रम व्यर्थ है । इसके उत्तर में ये कहते हैं—छह दर्शनों में जीवन्मुक्ति का निर्देश होने पर भी वहाँ शरीरनाश के बाद ही वास्तविक मुक्ति का कथन है । इससे मालूम पड़ता है कि जीवन्मुक्ति के प्रति वे लोग विरसता दिखलाते हैं । लोगों में यह भ्रम हो जायगा कि दो प्रकार की मुक्तियाँ कैसी हैं, वे जीवन्मुक्ति या परा-मुक्ति (मृत्यु के बाद) में भी सन्देह करने लग जायँगे और विश्वास के साथ मुक्ति प्राप्त करने में प्रवृत्ति नहीं दिखलायेंगे । सबसे अच्छा है कि रस-रसायन का सेवन करके शरीर को अजर-अमर कर लें और संसार को विश्वास दिलायें । सच तो यह है कि सभी लोग अपनी प्रशंसा करते हैं, दूसरे को निकृष्ट ही समझते हैं । कुलाचार (तांत्रिक-मत) में भी कहा है—

'जीवन्मुक्तावुपायस्तु कुलमार्गो हि नापरः ।'

(३. हर-गौरी की सृष्टि—पारद, अभ्रक)

गोविन्दभगवत्पादाचार्यैरपि—

४. इति धनशरीरभोगान्मत्वानित्यान्सदैव यतनीयम् ।
मुक्तौ सा च ज्ञानात्तच्चाभ्यासात्स च स्थिरे देहे ॥इति।

ननु विनश्वरतया दृश्यमानस्य देहस्य कथं नित्यत्वमवसीयत इति चेत्—मैवं मंस्थाः। षाट्कौशिकस्य शरीरस्यानित्यत्वेऽपि रसाभ्रकपदाभिलप्यहरगौरीसृष्टिजातस्य नित्यत्वोपपत्तेः।

पूज्य गोविन्द-भगवान् आचार्य जी भी [कहते हैं]—'इस प्रकार धन, शरीर और विलास को अनित्य (क्षणिक) समझ कर मुक्ति के लिए सदा यत्न करना चाहिए, वह (मुक्ति) ज्ञान से होती है, वह (ज्ञान) भी अभ्यास से होता है, अभ्यास तभी सम्भव है जब शरीर स्थायी (नीरोग) हो।' यदि कोई पूछे कि जो देह नश्वर के रूप में दिखाई पड़ती है वह कैसे नित्य बन सकती है; तो [यह शंका] ठीक नहीं–ऐसा मत समझो क्योंकि यद्यपि छह कोशों (त्वचा, रक्त, मांस, मेदस्, अस्थि और मज्जा) का बना शरीर अनित्य है तथापि रस और अभ्रक के नामों से अभिहित क्रमशः शिव और पार्वती की सृष्टि से उत्पन्न [देह तो] नित्य हो सकती है।

विशेष—षट्कोश = त्वचा, रक्त, मांस, मेदस्, अस्थि और मज्जा जो शरीर को ढँके रहते हैं। इनमें प्रथम तीन माता से तथा बाद के तीन पिता से प्राप्त होते हैं। ये छहों कोश आत्मा के आवरक (ढँकनेवाले, छिपानेवाले) हैं। वेदान्तशास्त्र में भी अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय इन पाँच कोशों की मान्यता है। देखिये—पञ्चदशी (३।१–११)। आयुर्वेदोक्त षट्कोशों से बना शरीर भले ही अनित्य हो परन्तु जब इसमें हर-गौरी की सृष्टि रस (पारद) और अभ्रक का संयोग हो जायगा तब उसे (शरीर को) हम नित्य बना देंगे। पारद शिव की सृष्टि है तथा अभ्रक पार्वती की। इस तरह शरीर नित्य हो जाने पर छह कोशों वाले शरीर का त्याग भी नहीं होगा और उसे दिव्य तथा दृढ़ भी बना दिया जायगा। तब मृत्युभय मिट जायेगा।

तथा च रसहृदये—

५. ये चात्यक्तशरीरा हरगौरीसृष्टिजां तनुं प्राप्ताः।
मुक्तास्ते रससिद्धा मन्त्रगणः किंकरो येषाम् ॥(१।७)इति।

तस्माज्जीवन्मुक्तिं समीहमानेन योगिना प्रथमं दिव्यतनुर्विधेया। हरगौरीसृष्टिसंयोगजनितत्वं च रसस्य हरजत्वेनाभ्रकस्य गौरीसंभवत्वेन तत्तदात्मकत्वमुक्तम्—

६. अभ्रकस्तव बीजं तु मम बीजं तु पारदः।
अनयोर्मेलनं देवि मृत्युदारिद्र्यनाशनम् ॥ इति।

उसी प्रकार रसहृदय में [कहा गया है]—'जो लोग शरीर को बिना त्यागे हुए ही हर-गौरी की सृष्टि (पारद-अभ्रक) से बना हुआ शरीर पाये हुए हैं, वे रससिद्ध (रसों को सिद्ध करनेवाले) लोक मुक्त हैं, मन्त्रों का समूह तो उनका किंकर (दास) है।' इसलिए जीवन्मुक्ति की कामना करने वाले योगी को पहले दिव्य-शरीर कर लेना चाहिए। रस (पारद) हर से उत्पन्न है, अभ्रक गौरी से; हर-गौरी-सृष्टि के संयोग से उत्पन्न होना तथा उन देवताओं रूप होना [इस श्लोक में] कहा गया है—[शिव पार्वती से कहते हैं]—'अभ्रक तुम्हारा बीज है और मेरा बीज पारद है; हे देवि, इन दोनों का मिलना मृत्यु और दरिद्रता का नाशक है।'

विशेष—रस-हृदय गोविन्द भगवत्पादाचार्य का लिखा हुआ ग्रन्थ है ये आद्य शंकराचार्य के गुरु थे। इनका समय प्रायः ७८० ई० है। यह आयुर्वेद-रसायन-शास्त्र का सुविख्यात ग्रन्थ है। अभ्रक-पारद मेलन से दिव्यशरीर धारण करके मृत्यु का नाश कर सकते हैं, सिद्ध-पारद से विद्ध होने पर लोहा सुवर्ण बन जाता है—इसीसे इसे दरिद्रता का नाशक कहा गया है। 'रससिद्ध' शब्द में श्लेष दिखलाते हुए भर्तृहरि ने नीतिशतक में ऐसे ही मुक्त पुरुषों का संकेत किया है—

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम् ॥

(४. रस की सामर्थ्य से दिव्य-देह की प्राप्ति)

अत्यल्पमिदमुच्यते। देवदैत्यमुनिमानवादिषु बहवो रससामर्थ्याद्दिव्यं देहमाश्रित्य जीवन्मुक्तिमाश्रिताः श्रूयन्ते रसेश्वरसिद्धान्ते—

७. देवाः केचिन्महेशाद्या दैत्याः काव्यपुरस्सराः।
मुनयो बालखिल्याद्या नृपाः सोमेश्वरादयः ॥

८. गोविन्दभगवत्पादाचार्यो गोविन्दनायकः ।
चर्वटिः कपिलो व्यालिः कापालिः कन्दलायनः ॥
९. एतेऽन्ये बहवः सिद्धा जीवन्मुक्ताश्चरन्ति हि ।
तनुं रसमयीं प्राप्य तदात्मककथाचणाः ॥ इति ।

यह तो बहुत थोड़ा ही कहा है। रसेश्वर सिद्धान्त में कहा गया है कि देवों, दैत्यों, मुनियों और मनुष्यों में, बहुत लोगों ने, रस की शक्ति से, दिव्य शरीर धारण करके जीवन्मुक्ति पाई है। [वे हैं—] कुछ देवतागण जैसे—महेश इत्यादि, काव्य (शुक्राचार्य) इत्यादि दैत्य; बालखिल्य आदि मुनि, सोमेश्वर आदि राजा, गोविन्द-भगवत्पादाचार्य, गोविन्दनायक, चर्वटि, कपिल, व्यालि, कापालि, कन्दलायन—ये तथा दूसरे भी बहुत-से सिद्ध लोग, जीवन्मुक्त होकर [पारद-] रस से बना शरीर पाकर, उस (रस की प्रशंसा) से परिपूर्ण आख्यानों से प्रसिद्ध होकर, विचरण करते हैं।

विशेष—रसेश्वरसिद्धान्त सोमदेव का लिखा हुआ ग्रन्थ है जिनका समय निर्धारित नहीं हो सका है। महेशाद्याः से अभिप्राय है शैवदर्शन में उक्त विद्येश्वरों का—अनन्त, सूक्ष्म, शिवोत्तम, एकनेत्र, एकरुद्र, त्रिमूर्तिक, श्रीकण्ठ शिखण्डी। कथाचणाः = कथाओं से प्रसिद्ध। 'तेन वित्तश्चुञ्चुप्चणपौ' (पा० सू० ५।२।२६) से 'कथाभिः वित्तः प्रसिद्धः' इस अर्थ में चणप् प्रत्यय हुआ है। अर्थ होगा—सदा रस की कथा कहने वाले, कथाओं से प्रसिद्ध।

(५. दो प्रकार के कर्म-योग)

अयमेवार्थः परमेश्वरेण परमेश्वरीं प्रति प्रपञ्चितः—
१०. कर्मयोगेण देवेशि प्राप्यते पिण्डधारणम् ।
रसश्च पवनश्चेति कर्मयोगो द्विधा स्मृतः ॥
११. मूर्च्छितो हरति व्याधीन्मृतो जीवयति स्वयम् ।
बद्धः खेचरतां कुर्याद्रसो वायुश्च भैरवि ॥ इति ।

यही अर्थ परमेश्वर (शिव) ने पार्वती को विस्तारपूर्वक समझाया है—'हे देवियों की देवि ! कर्मयोग (क्रियाविधि) से शरीर की स्थिरता प्राप्त होती है, यह कर्मयोग दो प्रकार का है रस (पारद) और वायु (= प्राणवायु)। हे भैरवि ! पारद और पवन मूर्च्छित होने पर रोगों का हरण करते हैं; स्वयं मृत होने पर जिलाते हैं और बद्ध होने पर आकाश में चलने की शक्ति देते हैं।'

विशेष—कर्मयोग = शरीर के कर्मों को स्थिर करने वाले पदार्थ— पारा और प्राणवायु। प्राणवायु शरीर के अन्दर संचरण करती है। प्राणायाम के द्वारा प्राणवायु को रोक देते हैं जिससे उसमें विशेष गति उत्पन्न हो जाती है तथा यह 'मूर्च्छित' कहलाती है। मूर्च्छित होने से ही रोगनिवारण की शक्ति इसमें आ जाती है। रससिद्ध योगी के रोग नष्ट होते हैं। अधिक निरोध होने पर यह स्वयं मृत हो जाती है तथापि योगियों को अपने से अलग होने नहीं देती—शरीर नित्य हो जाता है। स्तम्भित होने पर आकाश में चलने की शक्ति भी देती है। इस प्रकार न केवल पारद, प्रत्युत प्राणवायु पर भी रससिद्ध योगियों का अधिकार देखा जाता है।

(६. पारद के तीन स्वरूप—मूर्छित, मृत और बद्ध)

मूर्च्छितस्वरूपमुक्तम्—

१२. नानावर्णो भवेत्सूतो विहाय घनचापलम् ।
लक्षणं दृश्यते यस्य मूर्च्छितं तं वदन्ति हि ॥

१३. आर्द्रत्वं च घनत्वं च तेजो गौरवचापलम् ।
यस्यैतानि न दृश्यन्ते तं विद्यान्मृतसूतकम् ॥ इति ।

अन्यत्र बद्धस्वरूपमप्यभ्यधायि—

१४. अक्षतश्च लघुद्रावी तेजस्वी निर्मलो गुरुः ।
स्फोटनं पुनरावृत्तौ बद्धसूतस्य लक्षणम् ॥ इति ।

मूर्छित [पारद] का स्वरूप यों कहा गया है—"जब पारद (सूत) कई वर्णों का हो और उसमें घनत्व और चंचलता (तरलता) न हो, इस प्रकार के लक्षण दिखलाई पड़ने पर उसे मूर्छित (-पारद) कहते हैं। आर्द्र होना, घनत्व, चमक, गुरुत्व और तरलत्व, ये (लक्षण) जिसमें नहीं दिखलाई पड़ें उसे मृत सूतक (पारद) समझना चाहिए।" दूसरी जगह (अन्य पुस्तक में) बद्ध (पारद) पारद का स्वरूप भी कहा गया है—"जो क्षयरहित; थोड़ा द्रवित होनेवाला, तेजोमय (चमकीला), स्वच्छ, गुरु (भारी) तथा पुनः आवृत्तिकाल (संस्कार करने के समय) में विकसित होनेवाला—यह बद्ध-पारद का लक्षण है।

(७. रस के अष्टादश संस्कार)

ननु हरगौरीसृष्टिसिद्धौ पिण्डस्थैर्यमास्थातुं पार्यते, तत्सिद्धिरेव कथमिति चेत्—न। अष्टादशसंस्कारवशात्तदुपपत्तेः। तदुक्तमाचार्यैः—

१५. तस्य प्रसाधनविधौ सुधिया प्रतिकर्मनिर्मलाः प्रथमम् ।
अष्टादश संस्कारा विज्ञातव्याः प्रयत्नेन ॥ इति ।

[ऐसा प्रश्न पूछ सकते हैं कि] यदि [पारद को] हर और गौरी की सृष्टि सिद्ध कर देने पर शरीर को स्थिर करना संभव है, लेकिन इसे सिद्ध कर कैसे सकते हैं ? यह तर्क ठीक नहीं क्योंकि [पारद] के अष्टादश संस्कारों से ही उसकी उपपत्ति (सिद्धि) हो जाती है। आचार्यों ने कहा है--'उस (पारद) के साधन की विधि में, पहले विद्वानों को, प्रयत्नपूर्वक, प्रत्येक कर्म में निर्मल करने वाले, [पारद के] अठारह संस्कारों को जानना चाहिए।'

विशेष—उपर्युक्त शंका का अभिप्राय यह है—रस और अभ्रक हर-गौरी की सृष्टि है सही, यह भी ठीक है कि उन दोनों को सिद्ध कर लेने पर शरीर अजर-अमर हो जायगा किन्तु हमारा भौतिक शरीर तो रसाभ्रक की तीव्रता को सहन नहीं कर सकेगा—इसीलिए पारद को अठारह कर्मों से संस्कृत करते हैं। इसके बाद वह शरीर के लिए सह्य बन सकता है। प्रतिकर्मनिर्मला:=अठारह संस्कारों में एक के बाद दूसरे में पारद निर्मल से निर्मलतर होते जाता है।

ते च संस्कारा निरूपिताः—

१६. स्वेदनमर्दनमूर्च्छनस्थापनपातननिरोधनियमाश्च ।
दीपनगमनग्रासप्रमाणमथ जारणपिधानम् ॥
१७. गर्भद्रुतिबाह्यद्रुतिक्षारणसंरागसारणाश्चैव ।
क्रामणवेधौ भक्षणमष्टादशधेति रसकर्म ॥इति ।

तत्प्रपञ्चस्तु गोविन्दभगवत्पादाचार्य-सर्वज्ञरामेश्वरभट्टारक-प्रभृतिभिः प्राचीनैराचार्यैर्निरूपित इति ग्रन्थभूयस्त्वभयादुदास्यते।

[रस के] उन [अष्टादश] संस्कारों (शुद्ध करने के उपायों) का वर्णन इस प्रकार हुआ है—(१) स्वेदन, (२) मर्दन, (३) मूर्छन, (४) स्थापन, (५) पातन, (६) निरोध, (७) नियम, (८) दीपन, (९) गमन, (१०) ग्रासप्रमाण, (११) जारण, (१२) पिधान, (१३) गर्भद्रुति, (१४) बाह्यद्रुति, (१५) क्षारण, (१६) संराग, (१७) सारण तथा (१८) क्रामण और वेध करके भक्षण करना—ये रस के अठारह कर्म हैं। इनकी व्याख्या गोविन्दभगवत्पादाचार्य तथा सर्वज्ञ रामेश्वर आदि प्राचीन आचार्यों ने की है, अतः यहाँ ग्रंथ बढ़ जाने के भय से उसे छोड़ दिया जाता है।

विशेष—पारद के अठारह संस्कारों का वर्णन किसी रसायन-शास्त्र की पुस्तक में देखें। इनमें कितनी प्रक्रियायें तो वैज्ञानिक हैं, आधुनिकता से पूरा मेल रखती हैं। इनका सामान्य अर्थ इस प्रकार है—(१) स्वेदन=आर्द्रता निकाल देना, (२) मर्दन = मसलना, घिसना, (३) मूर्छन = घनत्व और तरलता निकाल देना, (४) स्थापन = स्थिर आकार का करना, (५) पातन = गिराना (६) निरोधन = रोकना, (७) नियमन = सीमित करना, (८) दीपन = जलाना (९) गमन = चलना या उड़ाना, (१०) ग्रासप्रमाण = गोली बनाना, (११) जारण = चूर्ण बनाना, (१२) पिधान = ढँक देना, (१३) गर्भद्रुति = आंतरिक परिवर्तन, (१४) बाह्यद्रुति = वाह्य परिवर्तन, (१५) क्षारण = क्षार के रूप में कर देना, (१६) संराग=रँगना, (१७) सारण=छिड़कना, तथा (१८) क्रामण (टुकड़े करके) और वेधन (चीर कर) करके भक्षण करना।

(८. देहवेध और उसकी आवश्यकता

न च रसशास्त्रं धातुवादार्थमेवेति मन्तव्यम्। देहवेधद्वारा मुक्तेरेव परमप्रयोजनत्वात्। तदुक्तं रसार्णवे—

१८. लोहवेधस्त्वया देव यदर्थमुपवर्णितः।
तं देहवेधमाचक्ष्व येन स्यात्खेचरी गतिः॥
१९. यथा लोहे तथा देहे कर्तव्यः सूतकः सता।
समानं कुरुते देवि प्रत्ययं देहलोहयोः॥
पूर्वं लोहे परीक्षेत पश्चाद्देहे प्रयोजयेत्॥ इति।

यह न समझें कि रस-शास्त्र केवल धातुओं के अर्थवाद (स्तुतिपरक लाक्षणिक वाक्य = प्रशंसा) के लिए है क्योंकि परम लक्ष्य तो देहवेध (शरीर में पारे का प्रयोग) से होनेवाली मुक्ति ही है। यह रसार्णव में कहा है—'[पार्वती शिव से पूछती हैं कि] हे देव, जिस प्रयोजन की सिद्धि के लिए आपने लोहवेध का वर्णन किया है उस देहवेध का वर्णन कीजिए जिससे आकाश में चलने की शक्ति प्राप्त होती है। [शिव ने कहा]—हे देवि, सज्जनों को चाहिए कि जिस प्रकार लोह में (= रक्त में) पारद का प्रयोग करते हैं उसी प्रकार देह में भी करें [क्योंकि] शरीर और रक्त दोनों में इसका एक ही रूप रहता है। पहले रक्त में परीक्षा करे फिर देह में प्रयोग करे।

विशेष—अर्थवाद = स्तुति या निन्दा के लिए प्रयुक्त लक्ष्यार्थयुक्त वाक्य, जैसे अपि गिरिं शिरसा भिन्द्यात् = ऐसा करने पर पहाड़ को भी सिर से तोड़ दे

सकता है। इसका लक्ष्यार्थ है कि उसके पास काफी शक्ति हो जायगी। अभिप्राय यह है कि रसशास्त्र में धातुओं की प्रशंसा ही है, सो बात नहीं—उसका अंतिम लक्ष्य है मुक्ति (जीवन्मुक्ति) जो देहवेध से होती है। देहवेध = शरीर को नित्य करना, पारे का शरीर में प्रयोग। लोहवेध = लोह (लहू) पर रस का प्रयोग। जैसे रक्त में प्रविष्ट होने पर पारा रक्त को कांचनवत् दिव्य कर देता है उसी प्रकार देह में प्रविष्ट हो जाने पर उसे भी दिव्य कर देगा।

(९. जीवितावस्था में मुक्ति—देहवेध के विषय में शंका)

ननु सच्चिदानन्दात्मकपरतत्त्वस्फुरणादेव मुक्तिसिद्धौ किमनेन दिव्यदेहसंपादनप्रयासेनेति चेत्—तदेतद्वार्तम्। अत्रार्तशरीरालाभे तद्वार्ताया अयोगात्। तदुक्तं रसहृदये—

२०. गलितानल्पविकल्पः सर्वाध्वविवक्षितश्चिदानन्दः।
स्फुरितोऽप्यस्फुरिततनोः करोति किं जन्तुवर्गस्य॥
(र० हृ० १।२०) इति।

२१. यज्जरया जर्जरितं कासश्वासादिदुःखविशदं च।
योग्यं यन्न समाधौ प्रतिहतबुद्धीन्द्रियप्रसरम्॥
(र० हृ० १।२९) इति।

२२. बालः षोडशवर्षो विषयरसास्वादलम्पटः परतः।
यातविवेको वृद्धो मर्त्यः कथमाप्नुयान्मुक्तिम्॥ इति।

कोई यह पूछ सकता है कि सत्, चित् और आनन्द के रूप में परम-तत्त्व के स्फुरण (साक्षात्कार) से ही जब मुक्ति मिल जाती है तब दिव्य-देह बनाने के लिए इस प्रकार के प्रयास से क्या लाभ है? [उत्तर होगा कि] यह तर्क व्यर्थ (वार्त) है क्योंकि वास्तविक (सत्य) शरीर बिना पाये हुए ऐसी बात (आत्मसाक्षात्कार से मुक्ति की बात) हो ही नहीं सकती है। वैसा रसहृदय में कहा है—'सभी विकल्पों को नष्ट करनेवाला तथा सभी प्रस्थानों (दर्शनों) से सम्मत चिदानन्द स्फुरित (प्रकट) होने पर, अप्रकट (अस्थिर) शरीरवाले जीवों पर क्या कर सकता है? (रसहृदय, १।२०)। जो (शरीर) वृद्धावस्था से जर्जरित (जीर्ण-शीर्ण) हो गया है, जिसमें खाँसी और दमा आदि दुःख पूर्णतया व्याप्त हों, जिसमें ज्ञानेन्द्रियों का प्रसार (गति) कुण्ठित हो जाता हो, वह समाधि के योग्य (शरीर) नहीं है। (र० हृ० १।२९)। मनुष्य

सोलह वर्षों तक तो बालक रहता है, बाद में विषय-रस के आस्वाद में लिपटा रहता है, वृद्ध होने पर विवेक-शून्य हो जाता है, वह मुक्ति कैसे पा सकता है ?'*

(१२. जीवितावस्था में मुक्ति—एक वाद)

ननु जीवत्वं नाम संसारित्वम् । तद्विपरीतत्वं मुक्तत्वम् । तथा च परस्परविरुद्धयोः कथमेकायतनत्वमुपपन्नं स्यादिति चेत्—तदनुपपन्नम् । विकल्पानुपपत्तेः । मुक्तिस्तावत्सर्वतीर्थकरसंमता । सा किं ज्ञेयपदे निविशते न वा । चरमे शशविषाणकल्पा स्यात् । प्रथमे न जीवनं वर्जनीयम् । अजीवतो ज्ञातृत्वानुपपत्तेः । तदुक्तं रसेश्वरसिद्धान्ते—

२३. रसाङ्कमेयमार्गोक्तो जीवमोक्षोऽन्यथा तु न ।
प्रमाणान्तरवादेषु युक्तिभेदावलम्बिषु ॥
२४. ज्ञातृज्ञेयमिदं विद्धि सर्वतन्त्रेषु संमतम् ।
नाजीवञ्ज्ञास्यति ज्ञेयं यदतोऽस्त्येव जीवनम् ॥ इति ।

कोई पूछ सकता है कि जीव होने का अभिप्राय है संसार के साथ रहना, उससे पृथक् रहने में मुक्ति है। तब परस्पर विरुद्ध [वस्तुओं—जीव और मुक्ति—] का एक आयतन (आधार) में रहना कैसे सिद्ध हो सकता है ? [उत्तर होगा कि] यह तर्क ठीक नहीं क्योंकि इसमें होनेवाले दोनों विकल्प असिद्ध हो जायँगे। मुक्ति को तो सभी तीर्थंकर (दार्शनिक-सम्प्रदाय के आचार्य) मानते हैं। क्या वह मुक्ति (१) ज्ञेय है या (२) नहीं ? यदि अज्ञेय मानते हैं तो 'खरहे की सींग' जैसे शब्दों की तरह असंभव (कल्पना का विषय) हो जायगी, और यदि पहला विकल्प (मुक्ति को ज्ञेय) मानते हैं तो जीवन को त्याग नहीं सकते क्योंकि बिना जीवन के कोई ज्ञाता बन जायगा—ऐसा सिद्ध नहीं कर सकते। रसेश्वर सिद्धान्त में कहा है—'रस-शास्त्र (रसेश्वर-दर्शन) में कथित नियम के अनुसार ही जीवन्मुक्ति संभव है, दूसरे किसी प्रकार से नहीं। विभिन्न युक्तियों का अवलम्बन करनेवाले [विभिन्न दर्शनों में] जहाँ [जीवन्मुक्ति को सिद्ध करने के लिए] दूसरे प्रमाण दिये गये हैं, वहाँ भी समझ लो कि सभी

---

* तुलनीय—चर्पटपंजरिका स्तोत्र में—
बालस्तावत्क्रीडासक्तः······।

तंत्रों से सम्मत ज्ञाता और ज्ञेय का सम्बन्ध रहता ही है। ज्ञेय (मुक्ति) को चूँकि जीवन से रहित व्यक्ति नहीं जान सकता, अतः जीवन की सत्ता स्वीकार करनी पड़ेगी ही।'

विशेष—ऊपर जीवन्मुक्ति को सिद्ध करने की बड़ी सुन्दर युक्ति है। पूर्व-पक्षियों का कहना है कि जीवित होना (संसार में रहना) और मुक्त होना दोनों विरोधी धारणायें हैं—एक स्थानपर दोनों की सत्ता हो ही नहीं सकती। इसपर उत्तर पक्षी दूसरी ही युक्ति का आश्रय लेते हैं कि मुक्ति की सत्ता यदि है तो ज्ञाता और ज्ञेय का सम्बन्ध भी रहेगा—मुक्ति ज्ञेय रहेगी, इसका ज्ञाता कोई जीवधारी व्यक्ति होना चाहिए क्योंकि निर्जीव या मृत व्यक्ति इसे कैसे जान सकेंगे। इसलिए जीवित होना और मुक्त होना—दोनों की सत्ता एक साथ स्वीकार करने में ही कुशल है, नहीं तो ज्ञानमीमांसाविषयक (Epistemo-logical) आपत्तियाँ उठेंगी। यदि मुक्ति को अज्ञेय मानते हैं तब तो यह बिल्कुल कल्पना की वस्तु हो जायगी, दूसरी सत्ता ही नहीं रहेगी। मुक्ति की सत्ता मानने पर जीवन्मुक्ति ही एकमात्र माननी पड़ेगी, विदेह मुक्ति के लिए कोई स्थान नहीं।

(११. शरीर की नित्यता—इसके प्रमाण)

न चेदमदृष्टचरमिति मन्तव्यम्। विष्णुस्वामिमतानुसारिभिर्नृपञ्चास्यशरीरस्य नित्यत्वोपपादनात्। तदुक्तं साकारसिद्धौ—

२५. सच्चिन्नित्यनिजाचिन्त्यपूर्णानन्दैकविग्रहम्।
नृपञ्चास्यमहं वन्दे श्रीविष्णुस्वामिसंमतम्॥ इति।

ऐसा भी न समझें कि यह (देह का नित्यत्व) पहले से देखा नहीं गया है। विष्णुस्वामी के मत पर चलने वाले लोग नरसिंह (नृ + पंचास्य = पंचानन) के शरीर को नित्य सिद्ध करते हैं। जैसा कि साकारसिद्धि में कहा गया है—सद्, चित्, नित्य के स्वरूप में, निज (अपना), अचिंतनीय, और पूर्ण आनन्द ही के रूप में जिनका एकमात्र शरीर (विग्रह) है, वैसे नरसिंह की वन्दना करता हूँ जो श्रीविष्णुस्वामी से संमत हैं।

विशेष—सद्=जिसकी सत्ता है, सदा प्रकाशित है। चित् = शुद्ध ज्ञान स्वरूप। नित्य = सदा संसार में विद्यमान, त्रिकाल में अबाधित। निज = आत्मस्वरूप। पूर्णानन्द = आत्म-साक्षात्कार के समय-जैसा आनन्द जिसमें ज्ञाता और ज्ञेय का द्वैध मिट जाय। विग्रह = शरीर। यह ध्येय है कि वे सारे विशेषण ब्रह्म के स्वरूप लक्षण के लिए अद्वैत-मत में युक्त होते हैं।

नन्वेतत्सावयवं रूपवदवभासमानं नृकण्ठीरवाङ्गं सदिति न संगच्छत इत्यादिनाक्षेपपुरःसरं सनकादिप्रत्यक्षं, 'सहस्रशीर्षा पुरुषः' (श्वे० ३।१४) इत्यादि श्रुति,—

तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं चतुर्भुजं शङ्खगदाद्युदायुधम् ।
(भाग० १०।३।९),

इत्यादिपुराणलक्षणेन प्रमाणत्रयेण सिद्धं नृपञ्चाननाङ्गं कथमसत्स्यादिति सदादीनि विशेषणानि गर्भश्रीकान्तमिश्रैर्विष्णुस्वामिचरणपरिणतान्तःकरणैः प्रतिपादितानि । तस्मादस्मदिष्टदेहनित्यत्वमत्यन्तादृष्टं न भवतीति पुरुषार्थकामुकैः पुरुषैरेष्टव्यम् । अत एवोक्तम्—

२६. आयतनं विद्यानां मूलं धर्मार्थकाममोक्षाणाम् ।
श्रेयः परं किमन्यच्छरीरमजरामरं विहायैकम् ॥ इति ।

[अब प्रश्न हो सकता है कि] नरसिंह के दिखलाई पड़ने वाले शरीर को जिसमें अवयव (अंग-प्रत्यंग) तथा रूप (आकृति या रंग) भी हैं, सत्तायुक्त कहना संगत नहीं है। इस आक्षेप के बाद—(१) सनकादि ऋषियों के प्रत्यक्ष के आधार पर, (२) 'सहस्र सिर वाले पुरुष' —इस वैदिक प्रमाण के आधार पर तथा (३) 'उस विचित्र, कमलनयन, चारभुजाओंवाले, तथा शंख. गदा आदि आयुधों वाले बालक को' (कृष्ण के वर्णन में, भागवत १०।३।९)—इस प्रकार के पौराणिक-लक्षणों के आधार पर, तीन प्रमाणों से सिद्ध होने पर भी नरसिंह का शरीर कैसे असत् होगा। यही कारण है कि सत् आदि (चित्, नित्य, निज आदि) विशेषणों का प्रतिपादन, विष्णुस्वामी के चरणों में अपने अन्तःकरण को लगाने वाले उनके शिष्य श्रीकान्त मिश्र ने किया है। इसलिए हमारा प्रतिपाद्य विषय जो देह का नित्यत्व है वह बिल्कुल नहीं देखा गया, ऐसी बात नहीं—यह पुरुषार्थ की कामना करने वाले व्यक्ति खोज लें। इसीसे कहा है—'सभी विद्याओं का समूह तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का मूल एक मात्र अजर और अमर शरीर को छोड़ कर, दूसरा क्या [हो सकता है] ?'*

---

* तुल० कालिदास, कुमार०—शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् (५।३३) ।

(१२. पारद-रस के सेवन से जरामरण से मुक्ति)

अजरामरीकरणसमर्थश्च रसेन्द्र एव । तदाह—

एकोऽसौ रसराजः शरीरमराजमरं कुरुते । इति ।

किं वर्ण्यते रसस्य माहात्म्यम् ।

दर्शनस्पर्शनादिनापि महत्फलं भवति ।

अजर और अमर करने की सामर्थ्य रसराज (पारद) में ही है । उसे कहा है—'एक रसराज ही शरीर को अजर, अमर करता है ।' रस की महिमा क्या कही जाय ? देखने और छूने से भी बड़ा फल मिलता है ।

(१३. पारद-लिंग की महिमा)

तदुक्तं रसार्णवे—

२७. दर्शनात्स्पर्शनात्तस्य भक्षणात्स्मरणादपि ।
पूजनाद्रसदानाच्च दृश्यते षड्विधं फलम् ॥

२८. केदारादीनि लिङ्गानि पृथिव्यां यानि कानिचित् ।
तानि दृष्ट्वा तु यत्पुण्यं तत्पुण्यं रसदर्शनात् ॥

इत्यादिना ।

अन्यत्रापि—

२९. काश्यादिसर्वलिङ्गेभ्यो रसलिङ्गार्चनाच्छिवः ।
प्राप्यते येन तल्लिङ्गं भोगारोग्यामृतप्रदम् ॥ इति ।

वैसा ही रसार्णव में कहा गया है—'उसके देखने से, छूने से, खाने से या केवल स्मरण से भी, इसकी पूजा करने से या स्वाद लेने से छह प्रकार के फल मिलते हैं । पृथ्वी में केदार आदि या दूसरे जो भी लिंग (शिवलिंग) हैं, उन्हें देखने से जो पुण्य होता है, वह रस (पारद) के दर्शन से भी मिलता है ।' दूसरी जगह भी—'काशी-आदि [सभी तीर्थों] के लिङ्गों से बढ़कर रसरूपी लिंग की अर्चना से शिव (देवता या कल्याण) की प्राप्ति होती है क्योंकि वह लिंग भोग, आरोग्य और अमरता प्रदान करनेवाला है ।*

---

* तुलनीय—पारदं परमेशानि ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ।
यो यजेत्पारदं लिङ्गं स एष शम्भुरव्ययः ॥
(अभ्यंकरटीका में उद्धृत) ।

रसनिन्दायाः प्रत्यवायोऽपि दर्शितः—

३०. प्रमादाद्रसनिन्दायाः श्रुतावेनं स्मरेत्सुधीः ।
द्राक्त्यजेन्निन्दकं नित्यं निन्दया पूरिताशुभम् ॥ इति ।

[पारद-] रस की निन्दा करने का कुपरिणाम दिखलाया गया है—'विद्वान् यदि प्रमादवश रस की निन्दा कर दे तो अपने मन में [उसके परिहार के लिए] इस (पारद) का स्मरण कर ले । निन्दक को सदा के लिए तुरत छोड़ दे क्योंकि वह अपनी निन्दा के चलते पापपूर्ण है ।'

(१४. पुरुषार्थ और ब्रह्म-पद)

तस्मादस्मदुक्तया रीत्या दिव्यं देहं संपाद्य योगाभ्यास-वशात्परतत्त्वे दृष्टे पुरुषार्थप्राप्तिर्भवति । तदा—

३१. भ्रूयुगमध्यगतं यच्छिखिविद्युत्सूर्यवज्जगद्भासि ।
केषांचित्पुण्यदृशामुन्मीलति चिन्मयं ज्योतिः ॥

३२. परमानन्दैकरसं परमं ज्योतिःस्वभावमविकल्पम् ।
विगलितसकलक्लेशं ज्ञेयं शान्तं स्वसंवेद्यम् ॥

३३. तस्मिन्नाधाय मनः स्फुरदखिलं चिन्मयं जगत्पश्यन् ।
उत्सन्नकर्मबन्धो ब्रह्मत्वमिहैव चाप्नोति ॥
(र० हृ० १।२१-२३) ।

इस प्रकार हमारे संप्रदाय में कही गई विधि से दिव्य-शरीर बनाकर, योग (ब्रह्म के साथ एकता की स्थापना) के अभ्यास के द्वारा परमतत्त्व देख लेने पर पुरुषार्थ की प्राप्ति होती है । तब—'दोनों भौंहों के बीच में स्थित रहने वाली तथा जो अग्नि विद्युत् तथा सूर्य की तरह संसार को प्रकाशित करती है वह चित् (चेतनता) के स्वरूप में वर्तमान ज्योति किन्हीं-किन्हीं ही पुण्य (पवित्र) दृष्टि वाले (व्यक्तियों) के समक्ष खुलती (प्रकाशित होती) है (३१) । परम आनन्द की प्राप्ति कराने वाला, एक (अद्वैत) रस से परिपूर्ण, परमतत्त्व-के रूप में, ज्योति ही जिसका स्वरूप है, जिसमें किसी विकल्प (पक्षान्तर) का स्थान नहीं जिससे सभी क्लेश (कष्ट) निकल जाते हैं, जो ज्ञान का विषय है, शान्त है, अपने में ही अनुभव की वस्तु है (३२)—उसमें अपने मन को लगाकर, प्रकाशित होने वाले समस्त चिन्मय संसार को देखते हुए मनुष्य, सभी कर्म-बन्धनों के नष्ट हो जाने पर यहीं (पृथ्वी में) ब्रह्मत्व प्राप्त कर लेता है (३३) ।' (रसहृदय १।२१–२३) ।

(१५. रस और परब्रह्म में समता—रसस्तुति)

श्रुतिश्च—'रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति' (तै० २।७।१) इति। तदित्थं भवदैन्यदुःखभरतरणोपायो रस एवेति सिद्धम्। तथा च रसस्य परब्रह्मणा साम्यमिति प्रतिपादकः श्लोकः—

३४. यः स्यात्प्रावरणाविमोचनधियां साध्यः प्रकृत्या पुनः
संपन्नः सह तेन दीव्यति परं वैश्वानरे जाग्रति ॥
ज्ञातो यद्यपरं न वेदयति च स्वस्मात्स्वयं द्योतते
यो ब्रह्मेव स दैन्यसंसृतिभयात्पायादसौ पारदः ॥

इति श्रीमत्सायणमाधवीये सर्वदर्शनसंग्रहे रसेश्वरदर्शनम्।

वैदिक प्रमाण भी है—'वह (परमात्मा) रस ही है। वह (पुरुष) रस (पारद) को पाकर आनन्दी (मुक्त) होता है' (तैत्तिरीय० २।७।१)। तो इस प्रकार भव (आवागमन) तथा दैन्य-दुःख के भार से बचने का उपाय रस ही है, यह सिद्ध हुआ। उसी प्रकार 'रस की समता परब्रह्म से है' यह सिद्ध करनेवाला श्लोक [देखें]—'प्रावरण [भ्रान्ति] से मुक्ति पाने की इच्छावाले व्यक्ति स्वभावतः जिसकी साधना करते हैं, फिर [यह पारद] पूर्ण हो जाने से, वैश्वानर के जागृत होने पर उसी के साथ खेलता भी है, जो स्वयं ज्ञात होने पर भी दूसरों को ज्ञात नहीं कराता, अपने आप प्रकाशित होता है, जो ब्रह्म के समान है वह पारद दीनता और संसार के आवागमन के भय से हमें बचावे।'

इस प्रकार श्रीमान् सायण-माधव के सर्वदर्शनसंग्रह में रसेश्वर-दर्शन [समाप्त हुआ]।

विशेष—उपर्युक्त श्लोक में पारद की स्तुति की गई, जिसमें इसे ब्रह्म के सारे रहस्य-वादी विशेषण दे दिये गये हैं। गफ ने अपने अनुवाद में दूसरी पंक्ति यों रखी है—संपन्नः सहते न दीव्यति० अर्थात् पारद सम्पन्न होने पर सहता नहीं और जागृत वैश्वानर होने पर खेलता भी नहीं।

इति बालकविनोमाशङ्करेण रचितायां सर्वदर्शनसंग्रहस्य
प्रकाशाख्यायां व्याख्यायां रसेश्वरदर्शनमवसितम्।